नियमसार गाथा १०२, टीका फिर से।

एकत्वभावनारूप से परिणमित सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है। एकत्वभावना अर्थात् स्वरूप जो ज्ञान और आनन्द—ऐसा जो स्वरूप। स्व-रूप—स्वभाव, उसकी एकाग्रता, वह भावना। ऐसी भावनारूप से परिणमित। इस ज्ञान-दर्शन और आनन्दरूप से परिणमित, होता हुआ। जैसा इसका स्वभाव है, वैसा पर्याय में हुआ। ऐसे **सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है।** आहाहा! भाषा जरा सादी है, परन्तु वस्तु अलौकिक है। आहाहा! **एकत्वभावना...** अर्थात् यह विकल्प, ऐसा नहीं। एकत्वभावना अर्थात् एक हूँ - ऐसा नहीं। एकत्व की, एकाग्रता की भावनारूप से परिणमित। शुद्ध चैतन्य आनन्द और अन्तर में अनन्त-अनन्त वीर्य और आनन्दघन, अखण्ड आनन्द उसरूप अन्दर परिणमित, उसमें लक्ष्य-दृष्टि करने पर पर्याय में उसरूप परिणमित अर्थात् उस अवस्थारूप हुआ। आहाहा! ऐसे **सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है।** है ?

अब कहते हैं, **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से...** भगवान आत्मा, उसका लक्षण और वह स्वयं, दोनों। **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला...** है। आहाहा! वस्तु जो पदार्थ है, उसे राग का संग और राग का बन्ध... संग और बन्ध दोनों द्रव्यस्वभाव

मैं नहीं है। वस्तु है अस्ति सत्ता, चैतन्य की सत्ता है, चैतन्य का अस्तित्व है। चैतन्य की शक्ति के सामर्थ्य में अनन्त बल के सामर्थ्यवाला तत्त्व है। आहाहा! वह उसका लक्षण **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** वह तो निरावरण ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित... आहाहा! राग से ज्ञात हो - ऐसा नहीं है - यह कहते हैं।

जैसा वह भगवान त्रिकाल निरावरण है, वैसे निरावरण उसकी पर्याय से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात! कहाँ मार्ग रह गया और कहाँ मार्ग माने? **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** स्वयं निरावरण त्रिकाल है, इससे उसके स्वभाव में निरावरणपना जो लक्षण पर्याय में है, उससे वह लक्षित हो सकता है। आहाहा! उसमें जो भाव है, उसके लक्षण से वह लक्ष्य हो सकता है। उसमें नहीं है, उससे वह लक्ष्य नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। एक-एक शब्द में पूरा...।

यह तो कहे दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो। परन्तु भान बिना (कि) तू अन्दर कौन है, किसका...? इसकी तो खबर नहीं होती। आहाहा! इसलिए पहली ही यह बात ली है कि **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** ज्ञात हो, ऐसा है। **ऐसा जो कारणपरमात्मा...** लो! त्रिभुवनभाई! यह कारणपरमात्मा। यह निरावरण से ज्ञात हो, तब उसे यह कारणपरमात्मा है—ऐसा ज्ञात होता है। और कारणपरमात्मा है—परन्तु दृष्टि बिना? वह राग से ज्ञात नहीं होता, विकल्प से ज्ञात नहीं होता, व्यवहार से ज्ञात नहीं होता, निमित्त से ज्ञात नहीं होता, भेद से ज्ञात नहीं होता। यह जो स्वभाव है, वह स्वभाव के भाव से ज्ञात होता है। जो इसमें नहीं है, उनसे यह ज्ञात नहीं होता - ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो इसमें है—त्रिकाल निरुपाधिक निरावरण ज्ञान-दर्शनलक्षण, उससे यह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षयोपशमज्ञान तो सर्वथा निरावरण नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षयोपशम-फयोपशम का यहाँ काम भी नहीं है। जो पर्याय अन्दर में ढलती है, वह क्षयोपशम फिर द्रव्य में नहीं है। वह पर्याय भले क्षयोपशमवाली हो, परन्तु वह पर्याय अन्दर झुकती है, वह क्षयोपशम बिना की चीज़ में झुकती है। आहाहा! यह क्षयोपशम भी उसे अभी यहाँ नहीं कहना है। यहाँ उसे किसी की अपेक्षा ही नहीं है। कर्म की अपेक्षा क्षयोपशम में आती है, वह नहीं। निश्चय से तो ऐसा कहना चाहते

हैं कि परम-पारिणामिक ज्ञायकभाव जो है, वह परम ज्ञायकभाव की परिणति से ज्ञात हो, ऐसा है। सामने है या नहीं, देखो न! आहाहा! ऐसा स्वरूप! लोगों को बेचारों को कान में पड़ा नहीं। ऐसे के ऐसे बाड़ा में बँधकर जिन्दगी पूरी करके चार गति में भटकने चले जाते हैं। यह चीज़ महाप्रभु!

सिद्धान्त तो यह सिद्ध करना है कि इसमें जो स्वभाव हो, उस स्वभाव से ज्ञात होता है। इसमें जो न हो, ऐसे भाव से वह ज्ञात नहीं होता। तो वह स्वयं त्रिकाल निरावरण-निरुपाधिक ज्ञानस्वभाववाला है। ऐसा उसका लक्षण का स्वभाव है। आहाहा! ऐसा ही **स्वभाववाला होने से निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** उससे लक्षित होता है। आहाहा! जिसे लक्षित करने में कहीं पर की कोई अपेक्षा नहीं है। उसकी जाति की जो निर्मल पर्याय, परमपारिणामिकस्वभाव की जाति की जो पर्याय, उस पर्याय से वह लक्षित (होता) है। आहाहा! अब इसमें क्या समझना? आहाहा! थोड़े शब्दों में बहुत भरा है, बहुत भरा है।

इसमें जो स्वभाव है, स्वयं त्रिकाल निरावरण है, परन्तु उसका लक्षण भी त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! ऐसे लक्षण से लक्षित। ऐसे लक्षण से लक्षित अर्थात् ज्ञात हो, ऐसा। ऐसा वह आत्मा है। आहाहा! सामने पुस्तक है या नहीं? आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का यह फरमान है। यह बात (तो) एक ओर रह गयी और यह करो.. यह करो.. व्रत करो.. अपवास करो.. ओली करो.. होली करो... यह करो। आहाहा! बेचारे की जिन्दगी चली जाती है। वह चीज़ नहीं है - ऐसा कहते हैं। यह करो.. करो.. ऐसे विकल्प करता है, वह चीज़ इसमें नहीं है। तो इसमें नहीं है, उससे कैसे ज्ञात हो? इसमें जो नहीं है, उससे यह कैसे ज्ञात हो? इसमें नहीं.. इसमें नहीं। तो इसे (आत्मा को) जानता है; वह इसमें नहीं है, यह उससे कैसे ज्ञात हो? आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, परन्तु बात तो, भाई! जैसी होगी, वैसी आयेगी। कोई दूसरी कहाँ से लाना? आहाहा!

ऐसा जो कारणपरमात्मा... ऐसा जो यह भगवान आत्मा, त्रिकाली ज्ञान-आनन्द अखण्ड ज्ञानस्वरूपी, जो अपने **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** है। आहाहा! गजब बात की है न! साधारण ऐसा कहे कि ज्ञान लक्षण है, इससे ज्ञात होता है—ऐसा कहने से कोई साधारण लक्षण मान ले। ज्ञान लक्षण और आत्मा लक्ष्य। चाहे जो ज्ञान

लक्षण मान ले, ऐसा नहीं है। जो ज्ञान निरावरण... आहाहा! है? निरावरण ज्ञान-दर्शन है। इस लक्षण से ज्ञान हो, ऐसा है। आहाहा! कठिन पड़ता है परन्तु मार्ग यह है। आहाहा! क्षण में चले जाते हैं। कितने ही फिर मर गये, उन्हें याद भी नहीं करते। याद करते हैं? हिम्मतभाई को याद करते हैं? गये सो गये। हो गया। आहाहा! ऐसे भाई, पुत्र, माता-पिता गये। आहाहा!

हमारी दुकान में से कितने ही चले गये। खुशालभाई गये, कुँवरजीभाई गये, आणन्दजीभाई गये, शिवलाल गये। आहाहा! कितने ही चले गये। अब वे कहाँ गये, उनका पता कोई पूछता है? वे गये, उनकी असुविधा हुई और सुविधा करते थे, इतना गया, यह उसकी दिक्कत निकालता है, उसे जरा रोता है। आहाहा! परन्तु वे कहाँ गये? आहाहा!

मुमुक्षु : किसे पूछना यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु श्रद्धा में तो विचार करे कि वे कहाँ गये होंगे? आहाहा! यह शास्त्र में आता है, कि भाई! तू एक हरितकाय इस पत्ते को तोड़ता है, तो इसमें तेरे पूर्व भव के माँ-बाप बैठे हैं। एक पत्ते के एक टुकड़े में असंख्य जीव। ऐसे नीम का पूरा पत्ता। ऐसा पूरा नीम। कितने जीव? बापू! अनन्त भव में किये हुए तेरी माँ और तेरे पिता मर गये हुए उसमें बैठे हैं। आहाहा! कभी विचार किया है? उसकी मोंघप और उनके भटकने की दु:खदशा जो वेदन की है... आहाहा! जरा सी यह बाहर की सुविधा मिले वहाँ तो मानो बस, हम तो मानो सुखी हो गये। दूसरे की अपेक्षा आगे बढ़ गये। आहाहा!

उसमें-पद्मनन्दिपंचविंशति में एक दृष्टान्त दिया था कि जो सिर को काटनेवाला है, उसके सामने तो यह देखता भी नहीं परन्तु कोई अंगुली में टच करके इतनी अंगुली काटी, उसके सामने देखा करता है, उसे बैरी मानता है। ऐसा दृष्टान्त है। क्या कहलाता है? पद्मनन्दिपंचविंशति। आहाहा! जो सिर को काटनेवाला शत्रु है, उसके सामने तो देखता नहीं कि यह क्या करता है। अंगुली को जरा तोड़ता है, वहाँ उसके सामने देखा करता है; इसी प्रकार महामिथ्यात्व—महाविपरीत श्रद्धा पूरे आत्मा का खून हो जाता है, उसके सन्मुख तो देखता नहीं और यह जरा दया, दान, व्रत के परिणाम हुए तो मानो आहा..! हो गया कल्याण। आहाहा! दृष्टान्त दिया है, हों! इसमें होगा कहीं है। पद्मनन्दिपंचविंशति। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि निरावरण ज्ञान-दर्शन... क्या कहते हैं? आहाहा! तू स्वयं त्रिकाली **निरुपाधिक स्वभाववाला होने से...** ऐसा। तू स्वयं ही निराकुल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से। तीनों काल में... आहाहा! इसलिए तेरे जो स्वभाव में है, उस जाति के निरावरण ज्ञान-दर्शनलक्षण से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! गजब बात की है न! जिसमें जो नहीं, उसके द्वारा ज्ञात हो? नहीं है, उसके द्वारा ज्ञात हो? आहाहा! इसमें है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द निरावरण लक्षण... आहाहा!

स्वयं ही **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित ऐसा जो कारणपरमात्मा...** यहाँ तक बात रखी अब। **वह, समस्त संसाररूपी नन्दन वन के वृक्षों की...** समस्त संसाररूपी नन्दन वन की वृक्षों के **जड़ के...** आहाहा! **आसपास क्यारियों में पानी भरने के लिए...** सामने शरीर कैसा है, ऐसा कहते हैं। एक ओर आत्मा निरावरण लक्षण से लक्षित हो ऐसा, तब यह शरीर कैसा? शरीर। आहाहा! **समस्त संसाररूपी नन्दन वन...** संसाररूपी नन्दन वन कहा। जैसे नन्दन वन सदा हरा-भरा होता है; वैसे संसार हरा-भरा जहर से भरपूर है। राग और द्वेष, विषय कषाय के जहर से भरपूर है। यह शरीर ही ऐसा है - (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! यह शरीर तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति निरुपाधिक स्वभाववाला है। आहाहा! उसके सम्मुख कभी सुना नहीं, देखा नहीं। आहाहा!

संसाररूपी नन्दन वन के... मेरुपर्वत के ऊपर जैसे नन्दन वन ताजा का ताजा दिखता है, ऐसा, उसके **वृक्षों की जड़ के आसपास क्यारियों में पानी भरने के लिए...** उस नन्दन वन के वृक्ष तो ऐसे के ऐसे अच्छे हरे ही रहा करते हैं। ऐसी वहाँ स्थिति है। यह शरीर कैसा है? यह **आसपास क्यारियों में पानी भरने के लिए जलप्रवाह से परिपूर्ण नाली समान वर्तता हुआ जो शरीर...** आहाहा! **नाली समान वर्तता हुआ जो शरीर...** आहाहा! **संसाररूपी नन्दन वन के वृक्षों की जड़ के आसपास क्यारियों में पानी भरने के लिए जलप्रवाह से परिपूर्ण नाली...** आहाहा! शरीर के सामने देखना, शरीर का ऐसा करना... शरीर का ऐसा करना... शरीर का ऐसा करना... उसे ऐसा खिलाना, उसे पिलाना, उसे सुलाना, उसे जगाना... आहाहा! यह कहते हैं कि संसाररूपी जो वन है, उसमें **नन्दन वन के वृक्षों की जड़ के आसपास क्यारियों में पानी भरने के लिए जलप्रवाह से परिपूर्ण नाली समान वर्तता हुआ जो शरीर...** आहाहा!

अब यह कहे कि अपने शरीर से धर्म होता है। '**शरीरआद्यं खलु साधनम् धर्म**' यहाँ शरीर है, वह जहर है। यह तो भगवान निरुपाधिस्वरूप अन्दर है। चैतन्य भगवान अन्दर है। वह त्रिकाली निरुपाधिस्वरूप है। वह निरुपाधि लक्षण से ज्ञात हो, ऐसा है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकारी परिणाम से तीन काल में ज्ञात हो, ऐसा है नहीं तो पाप के परिणाम हिंसा, झूठ, धन्धा और पूरे दिन धन्धे के पाप... सवेरे से शाम तक। ऐई! रचा-पचा हो। उसमें दिन के दो-दो, पाँच-पाँच हजार की आमदनी होती हो, तुम्हारे देखो पागल। आहाहा! पागल देख लो। ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा करना... यह देखो! ग्राहक को... आहाहा!

इसी प्रकार यह शरीर नन्दन वन के वृक्ष को जैसे ताजा रखने के लिये पानी होता है, वैसे इस शरीर को ताजा रखने के लिये **जलप्रवाह से परिपूर्ण नाली समान वर्तता हुआ जो शरीर उसकी उत्पत्ति में हेतुभूत द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित होने से एक है,...** यह **शरीर उसकी उत्पत्ति में हेतुभूत...** आहाहा! यह मिट्टी, जड़, धूल है यह। यह तो धूल, जड़, मिट्टी है। इसकी श्मशान में राख होगी। इतनी भी नहीं होगी। जलकर इतनी होगी। पवन आवे तो उड़ जाएगी। 'रजकण तेरे भटकेंगे जैसे भटकती रेत; फिर नर तन पाये कहाँ, चेत चेत नर चेत।' रजकण तेरे भटकेंगे। यह रजकण मिट्टी-धूल के। यहाँ अग्नि उठेगी। जलेंगे तो अग्नि निकलेगी यहाँ से। आहाहा!

'जैसे भटकती रेत, फिर नर तन पाये कहाँ' फिर बापू! यह शरीर कहाँ से मिलेगा? मुश्किल से अनन्त काल में मिला है। उसमें संसार के लिये इसका उपयोग करता है। राग और द्वेष पूरे दिन। इन पानी की नालियों से इस शरीर को खड़ा रखा है। आहाहा! पाप की नालियाँ भर-भरकर। आहाहा! **उसकी उत्पत्ति में हेतुभूत...** कैसा है शरीर? कि **द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित होने से...** शरीर की उत्पत्ति में हेतु तो द्रव्य जड़कर्म है या दया, दान और पुण्य-पाप के भाव, वे शरीर का कारण है क्योंकि वह बन्ध का कारण है। शुभ-अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति का, पूजा का भाव वह पुण्यबन्ध का कारण है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना वह पापबन्ध का कारण है। इन दोनों—पुण्य और पाप के भावरहित, इनसे रहित होने से आत्मा **एक है... 'एगो मे सासदो अप्पा'** इसकी व्याख्या की है। आहाहा!

मैं अकेला चैतन्य। शरीर से भिन्न मेरा चैतन्य शरीर अन्दर भिन्न है। आहाहा! वह और क्या होगा? चैतन्य शरीर। अरे! पुण्य-पाप के भाव को भी क्लेशशरीर कहा है। विग्रह, क्लेश का विग्रहशरीर है। शुभ और अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव, वह विग्रह क्लेश है। राग है, विकार है। आहाहा! उसे **द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित होने से...** नोकर्म तो स्वयं है। शरीर नोकर्म है न? इसलिए अब वह नोकर्म कैसे हुआ? उसकी उत्पत्ति का अर्थ यह द्रव्यकर्म और भावकर्म है। इन तीनों से **रहित होने से...**

शरीर उसकी उत्पत्ति में हेतुभूत द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित होने से एक है,... क्या कहा? समझ में आया? भगवान आत्मा जो यह द्रव्यकर्म जो यह शरीर जड़ है, वह तो संसार के भटकने के जल से नालियाँ भरी हुई हैं। ऐसा एक शरीर और उसके **हेतुभूत द्रव्यकर्म-भावकर्म...** अर्थात् नोकर्म यह और द्रव्यकर्म तथा भावकर्म तीनों से रहित आत्मा है, वह एकरूप अन्दर है। आहाहा! पाठ है न? **'एगो मे सासदो अप्पा' 'एगो मे सासदो अप्पा'** मैं एक हूँ। एक की व्याख्या की है कि यह शरीर यह भटकने के, चार गति के भटकने के नालियों को पूरा पाड़े, ऐसा यह शरीर है। इस शरीर की उत्पत्ति का हेतु द्रव्यकर्म और भावकर्म है। जड़कर्म और पुण्य तथा पाप, इन तीन से रहित अकेला है। आहाहा! कमाना, स्त्री, पुत्र और धन्धे के कारण कहाँ समय मिले? चिमनभाई! आहाहा!

धर्म करते हो? कहता है हाँ; एक घण्टे पूजा करते हैं न, भगवान की भक्ति की है। लो हो गया। हिम्मतभाई! तुम्हारे घर की बात है। धर्म-बर्म करते हो? आहाहा! न्याल को पूछा था। भगवान की पूजा-भक्ति एक घण्टे करते हैं। धूल में भी नहीं। उसमें-पूजा-भक्ति में क्या आया? यह तो कोई जरा शुभभाव है। ऐरण की चोरी और सुई का दान। तेईस घण्टे पाप में और एक घण्टे जरा शुभ। वह तो पुण्य है, कहीं धर्म-बर्म नहीं है। भगवान की पूजा, दान, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक शावश्त् आत्मा कैसा है? कि स्वयं निरुपाधिस्वरूप और निरावरण ज्ञान-दर्शन से ज्ञात हो ऐसा है; उससे विरुद्ध जो यह शरीर, यह पानी की नाली से शरीर बड़ा होता है। जैसे वन जमे, वैसे इस शरीर को पूरे दिन जीमावे। इसकी सब पंचायत। यह किया... यह किया... यह किया... ऐसे राग-द्वेष की नालियाँ भरी हैं, उनसे शरीर मिला। इस शरीर का हेतु? कर्मजड़ और भावकर्म पुण्य और पाप। ये तीनों आ गये।

द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म तीन **रहित होने से एक है,...** है न? यह अन्दर भगवान एक अलग है। आहाहा! यह चैतन्य हीरा जैसे डिब्बी में अलग। डिब्बी अलग हीरा अलग। वह तो जड़ डिब्बी है। वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। उसमें चैतन्य हीरा अन्दर ज्ञान के प्रकाश से भरपूर, आनन्द का सागर। वह चैतन्य सागर अन्दर भिन्न पड़ा है। आहाहा! किसने विचार किया है? यह शरीर... शरीर... शरीर... पूरे दिन। सवेरे से उठे, दोपहर में... चाय, आहार के समय अमुक करो और दोपहर में फिर वापस भुजिया या ऐसा करे, शाम को फिर पूड़ी और भुजिया बनावे। पूरे दिन यह होली सुलगती है। निवृत्त होकर धन्धा करे और स्त्री को प्रसन्न करे। अरे रे! प्रभु! तू कौन है? यह सब क्रिया है, वह तेरी है? प्रभु! यह तो संसार में भटकने को नन्दन वन को पुष्टि देनेवाले हैं। आहाहा!

तू तो एकरूप है। यह शरीर, कर्म और पुण्य-पाप के भाव से प्रभु तेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। आहाहा! इसे कहाँ खबर है? कभी सुना नहीं। **और वही (कारणपरमात्मा)...** भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु। चैतन्य चमत्कार मणिरत्न अन्दर भरा हुआ है। आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान भरा हुआ है, ऐसा प्रभु अन्दर है। ऐसा भगवान सब आत्मा अन्दर है। सम्मुख कब देखा है? ऐसा आत्मा **समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर के विविध विकल्परूप कोलाहल से रहित...** आहाहा! भगवान कारणपरमात्मा चैतन्यदल, आत्मस्वभाव, त्रिकाल रहनेवाले ज्ञान, आनन्द और शान्ति का सागर आत्मा, वह **समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर के...** क्रियाकाण्ड का आडम्बर—यह दया पालन की, व्रत किये, भक्ति की, अपवास किये, यह किया, वह किया। उसे मनाया वापस। यह वर्षीतप करे, फिर उसे पाँच-पच्चीस हजार खर्च करके मनावे। अधिक गृहस्थ हो तो लाखों रुपये खर्च करे। आहाहा! मानों हो गया तप और धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। इस क्रियाकाण्ड के आडम्बर से तो भगवान रहित है। आहाहा!

एक पहला द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरहित कहा, तो भी भावकर्म की वापस दूसरी व्याख्या जरा यह की है। आहाहा! उसमें आ गया है, परन्तु यहाँ विशेष स्पष्ट करने को **समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर...** वह तो सब आडम्बर है। आहाहा! अहिंसा करते हैं, गौशाला पालते हैं, दया पालते हैं, दया मण्डल के अधिपति हैं, पाँच-पच्चीस लाख इकट्ठे किये हैं, पाँच-पच्चीस हजार, पचास हजार मिला-मिलाकर। यह सब आडम्बर है।

क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। यह कोई आत्मा नहीं और इसमें धर्म-बर्म नहीं। कहो, चिमनभाई! आहाहा! ऐसा! अन्दर है या नहीं?

क्रियाकाण्ड, क्रियाकाण्ड अर्थात् शम्भु। क्रिया पूरे दिन। सवेरे यह और अमुक यह, अमुक खाया नहीं जाए, अमुक खाया जाए, अमुक चलता नहीं है... आहाहा! अफ्रीका में क्या मिले, यह भाई ने लिखा था। जतीश ने। यह मिलता है, यह मिलता है। एक अनार वहाँ नहीं मिलता। तेल नहीं मिलता। वहाँ तेल नहीं होता। अफ्रीका में। उसके बिना रहते हैं या नहीं? आहाहा! यह आत्मा तो **समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर के विविध विकल्प...** है, वह तो राग है। क्रियाकाण्ड का तो पंच महाव्रत और बारह व्रत वह तो सब राग और विकल्प है। आहाहा! कठिन काम। जिसे लोग धर्म मानकर बैठे, उसे कहते हैं कि राग है, विकार है। आहाहा! परमेश्वर का ऐसा फरमान है। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं। उनका यह फरमान है। मार्ग यह है। अरे! प्रभु! तू कहाँ चढ़ गया? किस रास्ते चढ़ गया तू? आहाहा! जिस रास्ते जाना चाहिए, उस रास्ते के सन्मुख देखता नहीं और कुरास्ते-ऊँधे रखते दौड़... दौड़... दौड़... दौड़... दौड़ता है। ऐसा आता है न? आहाहा! बहुत जोरवाला दौड़ता हो, इसलिए राग-द्वेष बहुत जोरवाला करता है। आहाहा! मानो बहुत क्रिया करते हैं। आहाहा!

क्रियाकाण्ड के आडम्बर के विविध विकल्परूप... भिन्न-भिन्न प्रकार के विकल्प। एक प्रकार के नहीं, कहते हैं। क्रिया भी अलग-अलग प्रकार की होती है न? व्रत की, तप की, भक्ति की, पूजा की, दान की, दया की, काम की, क्रोध की, विषय की, भोग की क्रिया, वह सब विकल्प है, राग है, विकार है। उन **विविध विकल्परूप कोलाहल...** वह कोलाहल है। आहाहा! **'सेसा मे बाहिरा भावा'** इसकी व्याख्या है। तीसरे पद की। **'सेसा मे बाहिरा भावा'** वे सब बहिर्भाव हैं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, रोग, भोग, विषय और वासना यह सब बहिर्भाव हैं; चैतन्य में ये नहीं हैं। भगवान तो अन्दर निरुपाधिक त्रिकाल आनन्द का नाथ है। तुझे खबर नहीं। तू रंक होकर... राजा को रंक होकर तू मानता है। बड़ा बादशाह है, उसे तू भिखारी मानकर बैठा है। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा जो **कोलाहल से रहित सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ...** आहाहा! स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतना। ज्ञानस्वरूप जो आत्मा है। ज्ञान

अर्थात् यह शास्त्र का जानपना, वह नहीं। अन्दर ज्ञानस्वरूप ही चैतन्य है। जिसकी सत्ता में यह ज्ञात होता है। यह है... यह है... यह है... उसकी सत्ता में ज्ञात होता है, वह ज्ञानसत्ता है। वह यह चीज़ ज्ञात नहीं होती; वास्तव में तो वह ज्ञान ज्ञात होता है। आहाहा! जिसके अस्तित्व में, जिसकी मौजूदगी में यह ज्ञात होता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। जिसकी अस्ति में स्वयं जानता है, वह ज्ञान जानता है। ज्ञान में ज्ञान रहकर ज्ञान जानता है। आहाहा!

ऐसा जो **सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ...** आहाहा! ऐसी ज्ञानचेतना को **अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ...** दया, दान और काम-क्रोध के परिणाम, वह कर्मचेतना, विकारीभाव है और उसके फलरूप से कर्मफलचेतनारूप हर्ष और शोक, वह दुःख है। आहाहा! ऐसे **अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ...** आहाहा! वह आत्मा अतीन्द्रियरूप से आत्मा को भोगता हुआ। अतीन्द्रियरूप से, अतीन्द्रिय आत्मा, अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ। आहाहा!

शाश्वत रहकर... मुनिराज कहते हैं कि **मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है;...** मेरे लिये इस प्रकार से अन्दर उपादेयरूप से रहता है। मेरे आदरणीय हो तो ऐसा आत्मा है। यह सम्यग्ज्ञानी का लक्षण। यह सम्यग्दृष्टि के धर्म की शुरुआत के लक्षण। आहाहा! **सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से...** पर्याय में **भोगता हुआ शाश्वत रहकर...** आहाहा! अतीन्द्रियपने को भोगता हुआ शाश्वत रहा, **मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है...** मेरे लिये उपादेय वह एक ही आत्मा है। आहाहा! उपादेय अर्थात् आदरणीय। मेरे आदरणनेयोग्य दूसरी एक भी चीज़ नहीं है। आहाहा! मुनिराज अपनी बात करते हैं।

पर्याय का अनुभव हुआ है। पर्याय का द्रव्य में, द्रव्य का पर्याय में अनुभव हुआ। वह पर्याय द्रव्य से भिन्न रही है। उस पर्याय में मेरे लिये यह द्रव्य कहते हैं उपादेयरूप से रहा। अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ। आहाहा! ऐसी भाषा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का! वह तो एकेन्द्रिया, द्वोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया... हो गया, लो! तत्सुत्री करणेन, हो गयी सामायिक। धूल में भी सामायिक नहीं। अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं होती; मिथ्यादर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण आये कहाँ से ? एक के बिना सब शून्य है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ...** मैं। आहाहा! वह **भोगता हुआ**

शाश्वत रहकर... वापस वस्तु शाश्वत रहती है। मैं अतीन्द्रियरूप से भोगता हूँ, तो भी वस्तु शाश्वत रहकर **मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है;...** आहाहा! मेरे लिये आदरणीय यह एक ही आत्मा रहता है। आहाहा! अरे रे! सुनने को मिलता नहीं। ऐसी बात कान में पड़ती नहीं। आहाहा! पूरे दिन संसार के धन्धे, निवृत्त होवे तो बाहर की व्यवहार की, क्रियाकाण्ड की बातें सुनें, वह भी सब क्रियाकाण्ड कैसा है, यह भी खबर नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा तो अन्दर एक ओर रह गया।

त्रिकाली निरुपाधिक, निरावरण लक्षण से ज्ञात हो ऐसा... आहाहा! वह यह भावकर्म और द्रव्यकर्म से ज्ञात नहीं होता ऐसा और शुद्ध ज्ञानचेतना को भोगनेवाला... आहाहा! यह पर्याय की बात है। पर्याय में **भोगता हुआ शाश्वत रहकर...** तथापि वस्तु शाश्वत रहकर **मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है;...** आहाहा! एक तो भाषा ही कठिन। अन्दर परमात्मा विराजता है, भाई! केवलज्ञानी परमात्मा हुए, अरिहन्त हुए, सिद्ध हुए, वे कहाँ से हुए? कोई बाहर से आते हैं? अन्दर भरा है। अन्दर सब भरा है, उसमें से प्रवाह आता है, वह प्राप्त की प्राप्ति है, उसमें से बाहर आता है। यह पानी का घड़ा भरा है, वह छलकता है। छलकाये छे को हिन्दी में क्या कहते हैं? छलकता है। इसी प्रकार भगवान आनन्द और ज्ञान जल से भरा हुआ है। वह पर्याय की सब अवस्था में छलकता है। यह दुनिया की भाषा से अलग प्रकार है। वह घण्टे भर सुनने जाए तो आत्मा कौन? आनन्दकन्द अखण्ड है। अब कहीं-कहीं यहाँ का पढ़-पढ़कर बातें करते हैं। उनमें यह था कब? यहाँ की पुस्तकें पढ़कर अब कितने ही बातें करते हैं। आत्मा के नाम से (बातें करते हैं)। अभी तो देव-गुरु-शास्त्र का ठिकाना नहीं। देव-गुरु-शास्त्र किसे कहना? उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, वहाँ आत्मा कहाँ से आया? आहाहा! वह **मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है;...** दुनिया दुनिया का जाने, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरे लिये तो यह शाश्वत है। अतीन्द्रियरूप से भोगने पर भी वस्तु शाश्वत रहती है। **जो शुभाशुभ कर्म के संयोग से उत्पन्न होनेवाले...** शुभ और अशुभ कर्म के संयोग से उत्पन्न होनेवाले **शेष बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह,...** आहाहा! अभ्यन्तर और बाह्य दोनों परिग्रह। **वे सब निज स्वरूप से बाह्य हैं।** मेरे स्वरूप से बाह्य है। **'सव्वे संजोगलक्खणा'** आहाहा! यहाँ तो अभी एक स्त्री मेरी नहीं, ऐसा मानना, इसे पानी उतर जाता है परन्तु वह तो उसका आत्मा अलग, शरीर

अलग-रजकण अलग, तेरे कब थे? उसका आत्मा मरकर कहाँ जाएगा और उसका आत्मा कहाँ से आया? उसके शरीर के रजकण कहाँ से उत्पन्न हुए। पूर्व में बिच्छु के डंक थे, वे परिणमित होकर अभी शरीर हुआ है। सर्प का जहर था, वह शरीररूप हुआ। यह शरीर के परमाणु भविष्य में वापस दूसरे प्रकार से होंगे। आहाहा! यह तो मिट्टी, जड़, धूल है। आहाहा! इससे भगवान अन्दर भिन्न है। वह... आहाहा!

बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह,... से भिन्न है। **सब निज स्वरूप से बाह्य हैं।** सब विकल्पमात्र... आहाहा! णमोकार गिनना, वह भी एक विकल्प है, राग है। आहाहा! कठिन बात, प्रभु! वीतराग का मार्ग कोई अलग प्रकार है। कहते हैं कि वह बाह्य जितने अभ्यन्तर और बाह्य विकल्प उठते हैं, वे दोनों **निज स्वरूप से बाह्य हैं।** मेरी चीज़ को वे स्पर्श नहीं करते। आहाहा! **ऐसा मेरा निश्चय है।** आहाहा! मुनिराज कहते हैं, यह चारों पहलुओं से सब समुचित है, हों! आहाहा! **ऐसा मेरा निश्चय है।** आहाहा! श्लोक तो बहुत अच्छा था। पौन घण्टे तो चला। आहाहा!

वे सब... बाह्य और अभ्यन्तर। कर्म के संयोग से उत्पन्न होनेवाले। यह स्त्री, कुटुम्ब वह तो अघाति से उत्पन्न होता है। स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत यह बाहर की चीज़ें तो अघातिकर्म से उत्पन्न होती हैं और यह पुण्य-पाप, दया-दान, यह सब घातिकर्म के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। आहाहा! दोनों कर्म से उत्पन्न होनेवाले भाव। कहा न? बाह्य और अभ्यन्तर दोनों आ गये न? दोनों परिग्रह। **वे सब निज स्वरूप से बाह्य हैं।—ऐसा मेरा निश्चय है।** मुनिराज कहते हैं। आहाहा! यह टीका! यह मार्ग ऐसा है। कभी सुना भी नहीं। बाहर में और बाहर में क्रियाकाण्ड में मर गया। यहाँ तो कहते हैं कि क्रियाकाण्ड से भी मैं तो भिन्न हूँ। मुझे और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

श्लोक-१३८

[अब इस १०२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

अथ मम परमात्मा शाश्वतः कश्चिदेकः,
सहजपरमचिच्चिन्तामणिर्नित्यशुद्धः ।
निरवधि-निज-दिव्यज्ञानदृग्भ्यां समृद्धः,
किमिह बहुविकल्पैर्मे फलं बाह्यभावैः ।।१३८।।

(हरिगीतिका)

परमात्मा शाश्वत अहो मेरा कथञ्चित् एक है।
चैतन्य चिन्तामणि परम है सहज शाश्वत शुद्ध है॥
निज दिव्य अनहद ज्ञान दर्शन से सदा समृद्ध है।
तो फिर विविध बहिरंग भावों से मुझे क्या फल मिले?॥१३८॥

[श्लोकार्थः] मेरा परमात्मा शाश्वत है, कथंचित् एक है, सहज परम चैतन्यचिन्तामणि है, सदा शुद्ध है और अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से समृद्ध है। ऐसा है तो फिर बहु प्रकार के बाह्य भावों से मुझे क्या फल है?॥१३८॥

श्लोक -१३८ पर प्रवचन

[अब इस १०२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] स्वयं

अथ मम परमात्मा शाश्वतः कश्चिदेकः,
सहजपरमचिच्चिन्तामणिर्नित्यशुद्धः ।
निरवधि-निज-दिव्यज्ञानदृग्भ्यां समृद्धः,
किमिह बहुविकल्पैर्मे फलं बाह्यभावैः ।।१३८।।

आहाहा! **मेरा परमात्मा...** मेरा परमात्मा अर्थात् कि यह आत्मा। इस आत्मा को यहाँ परमात्मा कहा है। कैसे जँचे? सवेरे उठकर दाँतन ठीक से न आया हो तो, कोई लाया नहीं? कोई मांगण आयी नहीं? लिया नहीं? क्या किया? आहाहा! चाय चाहिए, पानी चाहिए, आहार चाहिए। आहाहा! पूरे दिन होली सुलगती है। उसमें भगवान तो एक ओर पड़ा रहा। यहाँ तो कहते हैं कि **मेरा परमात्मा...** यह परमात्मा, हों! तीर्थंकर देव वे तो उनके परमात्मा हैं। तीर्थंकरदेव परमात्मा अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर हैं, परन्तु वे तो उनके परमेश्वर हैं। मेरा परमात्मा तो यहाँ है। आहाहा! आत्मा, वह परमात्मा। शान्ति की बात है, बापू! धीरज की - धीरज की बात है। पहले अपने बनियों में एक रिवाज था। विवाह के समय सूत का टुकड़ा रखते थे, उसे उलझन में लाकर, उलझन डालकर उसे दे। क्योंकि विवाह करने आया है तो इसकी कुछ धीरज रहती है या नहीं? ऐसा पहले था। अब तो कहाँ निवृत्त है? अब तो मुम्बई चार बजे विवाह करके पाँच बजे घर चले जाते हैं। आहाहा! पहले तो यह था। सूत का टुकड़ा उलझाकर। फिर ऐसा कहते हैं कि इसे धीरज है या नहीं? विवाह करने आया है तो एकदम अधीरज और आकुलता और व्याकुलता में है तो इसका सुलझाव कर सकता है या नहीं? इसी प्रकार आत्मा और जड़ का हल करना, बापू! इसमें बहुत शान्ति चाहिए। यह सब आंटीवाले टुकड़े पड़े हैं। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, रागादिभाव... आहाहा! जिसे पंच महाव्रत कहते हैं पंच, बारह व्रत कहते हैं वह सब राग है। आत्मा का स्वरूप नहीं।

यहाँ तो **मेरा परमात्मा शाश्वत है,...** कथंचित् एक है। वस्तुरूप से एक है। गुणभेद, पर्यायरूप से भले दो हो। कथंचित् द्रव्य की अपेक्षा से एक है। द्रव्य जो वस्तु है। सत्ता, अस्तित्व आत्मा का, अनादि अनन्त नित्य अमूर्त। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरहित प्रभु अन्दर है। जिसमें रंग, गन्ध और रस, स्पर्श नहीं है तथा राग-द्वेष तो नहीं, नहीं और नहीं। आहाहा! ऐसा **मेरा परमात्मा शाश्वत है,...** कथंचित् **एक है, सहज परम चैतन्यचिन्तामणि है,...** स्वाभाविक परम चैतन्यचिन्तामणि है। वह तो पत्थर का चिन्तामणि है। बाहर होता है, वह पत्थर का है। वह तो कहीं से मिले तो आवे। यह तो सहज ही है। मिलना है कि वह चिन्तामणि कहीं पड़ा हो और भाग्यशाली को मिल जाए। कामधेनु गाय। यह तुम्हारे वढ़वाण में थी। कैसा?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....खबर है न खबर। चुन्नीभाई ने ८२ के वर्ष में हमारे पास नियम लिया था। ८२ के वर्ष का चातुर्मास था न? १९८२ का चातुर्मास वढवाण में था न? यह खबर नहीं होगी। बहुत वर्ष हो गये १८ + ६ = २४ और ५४ वर्ष। कितने वर्ष हुए? ६० वर्ष। छह वर्ष की खबर नहीं होगी। ८२ के वर्ष में चातुर्मास था न? बाहर व्याख्यान था। ठाकरसीभाई की धर्मशाला में। डेलाबाहर। तीनों उपाश्रयवाले थे। ८२ का वर्ष। उस दिन चुन्नीभाई ने घर में नियम लिया था। चुन्नीभाई ने, तब चातुर्मास था। सुन्दर वोरा का उपाश्रय में। सुन्दर वोरा का उपाश्रय तुम्हारे है न। आहाहा! यह बात पूरी अलग है। आहाहा!

कहते हैं कि स्वभाविक परम चैतन्यचिन्तामणि। अर्थात् क्या कहा? कि वह चैतन्यचिन्तामणि तो कहीं हो और मिले। यह तो स्वभाविक **परम चैतन्यचिन्तामणि...** शाश्वत है। आहाहा! स्वभाविक चैतन्यचिन्तामणि महारत्न है, अरूपी है। वर्ण, गन्ध, रस, रूप नहीं, रागादि तो नहीं। वह तो सूक्ष्म अरूपी है। वह नहीं। **सदा शुद्ध है...** मेरा प्रभु परमात्मा तो सदा शुद्ध है अर्थात् अशुद्धपना तो लेकर बैठा है कि राग-द्वेष मानकर। वस्तु में अशुद्ध नहीं है। पुण्य और पाप को मेरा मानकर अशुद्धरूप से चार गति में-चौरासी के अवतार में भटकाव हो रहा है। नरक और निगोद। आहाहा! भटकने। परन्तु मैं तो **सदा शुद्ध है...** आहाहा! वह अशुद्धता मुझमें है नहीं। जरा अशुद्धता चारित्रमोह का दोष दिखता है, उसे मैं जानता हूँ कि है, परन्तु मुझमें नहीं है। आहाहा!

अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से... अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से **समृद्ध है।** देखो! यह सब पर्याय जानती है, हों! द्रव्य तो द्रव्य है। पर्याय जो प्रगट। पर्याय बिना का द्रव्य तीन काल में कभी प्रगट नहीं होता। पर्याय बिना का अकेला द्रव्य हो तो निश्चयाभास हो जाता है। वेदान्त हो जाता है। यह तो जाननेवाली पर्याय ऐसा कहती है कि मेरा आत्मा शाश्वत है। यह और जाननेवाली पर्याय कहती है। ध्रुव है तो ध्रुव है। आहाहा! पर्यायरहित कोई दिन किसी समय होवे तो समाप्त हो जाए। वह वस्तु ही न रहे। पर्याय के बिना द्रव्य ही नहीं रह सकता। आहाहा!

सदा शुद्ध है और अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से समृद्ध है। अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से समृद्ध है। आहाहा! उसमें आया था न? **मेरे लिये उपादेयरूप से रहता है।**

उपादेयरूप से है परन्तु मानता कौन है ? पर्याय। समझ में आया ? यदि पर्याय द्रव्य में मिल जाए तो फिर हो गया। कुछ रहे नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सब वहाँ घुस गये तो बाहर में कुछ रहे नहीं। आहाहा! यह तो मेरा प्रभु ऐसा है, ऐसा पर्याय जानती है। पर्याय प्रगट बाहर रहकर (जानती है)। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय ऐसा कहती है कि मैं शाश्वत् परमात्मा हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ऐसा जानती है कि में यह शाश्वत् परमात्मा हूँ। पर्याय ऐसा जानती है। प्रगट रही हुई पर्याय... यह (समयसार) ३२० गाथा में है। सदा त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर प्रत्यक्ष प्रतिभासमय शुद्ध परमपारिणामिकभावलक्षण ऐसा निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ—ऐसा पर्याय मानती है। वही मैं हूँ। खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह मैं नहीं हूँ। वहाँ दो शब्द हैं। खण्ड-खण्ड ज्ञान वह पर्याय स्वयं। खण्ड-खण्ड पर लक्ष्य करना तो नहीं, इसलिए खण्ड-खण्ड ज्ञान वह मैं नहीं हूँ; मैं यह हूँ, ऐसा पर्याय जानती है। ध्रुव तो कहाँ ? आहाहा! पर्याय न हो तो जाने कौन ? आहाहा! तथापि पर्याय में आत्मा आता नहीं, तथापि पर्याय आत्मा को जाने बिना रहती नहीं। आहाहा!

निज दिव्य ज्ञानदर्शन से समृद्ध है। अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से समृद्ध है। **ऐसा है तो फिर बहु प्रकार के बाह्य भावों से मुझे क्या फल है ?** ऐसा मैं हूँ, फिर बाह्य की चिन्ता का, विकल्पों का क्या काम है ? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)